भाषण कला

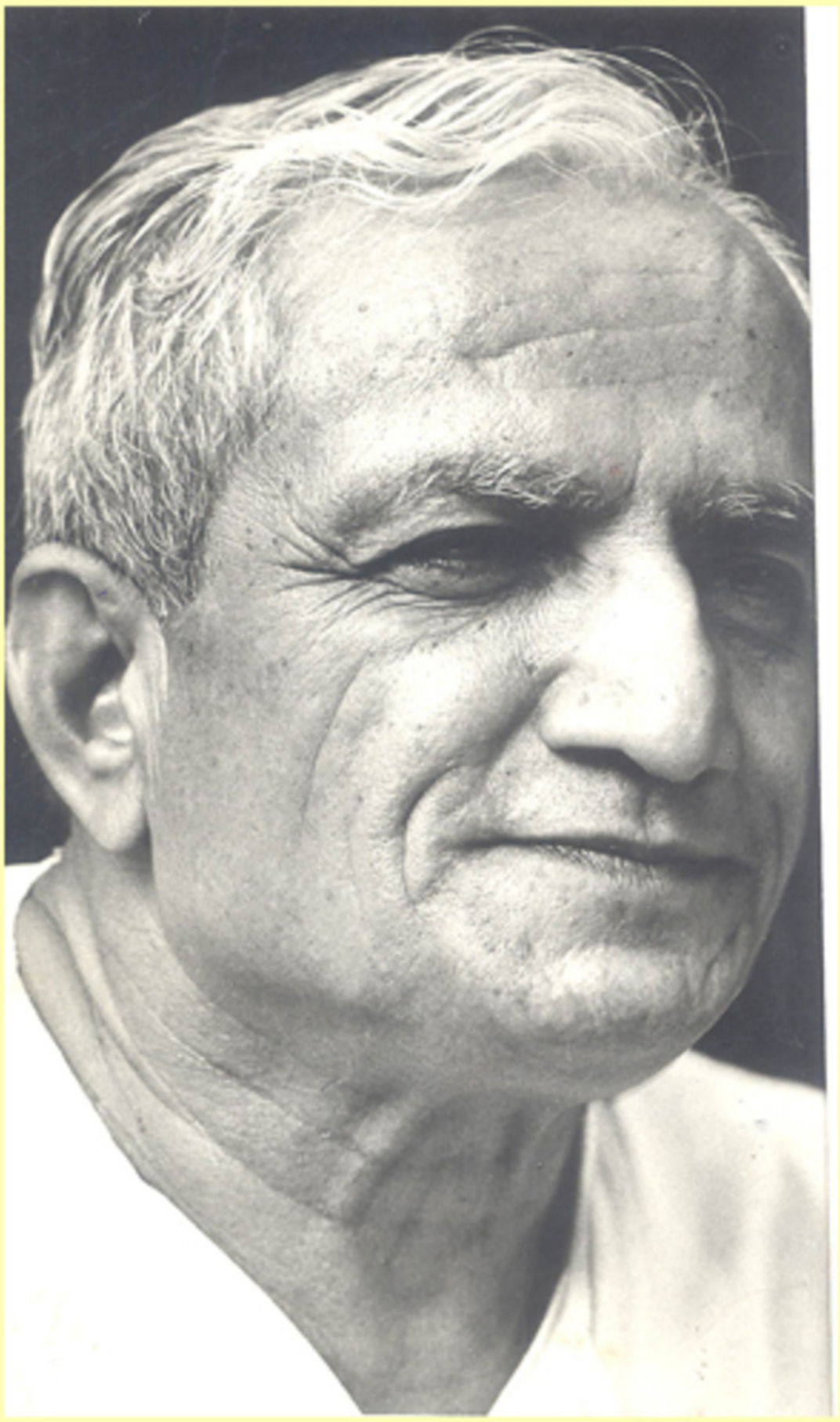

-दत्तोपंत ठेंगड़ी

भाषण-कला

वक्तृत्व–साधन

वक्तृत्व का महत्त्व आज के जनतान्त्रिक युग में किसी की भी समझ में सरलता से आ सकता है। इतना ही नहीं, इस विषय का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त हो– ऐसी तीव्र इच्छा सभी रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की होती है। सार्वजनिक जीवन की सफलता–असफलता में 'वक्तृत्व' निर्णायक परिणाम कर सकता है। इस दृष्टि से इस विषय पर खुली चर्चा स्वागत के योग्य है।

इसके साथ ही यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि इस विषय पर खुले रूप से अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार किसे है ? यदि यह कहा जाये कि ख्यातिप्राप्त व सिद्धवाक् वक्ता को ही यह अधिकार है, तब तो प्रस्तुत लेखक के लिए इस सम्बन्ध में चार पंक्तियाँ लिखना ही दुस्साहस होगा; परन्तु सौन्दर्य–शास्त्र का विवेचन करने का अधिकार सुन्दर व्यक्ति का ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वतः कुरूप होने वाले व्यक्ति का भी यह अधिकार है, बशर्ते कि उसने इस शास्त्र का अध्ययन किया हो। अध्ययन के अभाव में प्राकृतिक सौन्दर्य प्राप्त व्यक्ति को भी यह अधिकार नहीं हो सकता। अतः वक्तृत्व विषयक मत–प्रदर्शन का अधिकार इस विषय में रुचि रखने वाले श्रोता का भी है, इसी भूमिका से कुछ विचार प्रस्तुत करने का साहस लेखक ने किया है।

कुछ भ्रान्तियाँ

यद्यपि यह प्रसन्नता का विषय है कि जनसाधारण को वक्तृत्व की महत्ता समझ में आने लगी है; परन्तु खेद का विषय है कि वक्तृत्व के बारे में जितनी भ्रान्तियाँ आज प्रचलित हैं, उतनी शायद इसके पूर्व कभी नहीं रही होंगी। यहाँ तक कहा जाता है कि भगवान् ने जिसे मुख दिया है उसे वक्ता की उपाधि देने में कतई हिचक नहीं होनी चाहिए। यह ठीक है कि वक्तृत्व का अर्थ है बोलने

की शक्ति; परन्तु बोलने की चाहे जैसी क्रिया को वक्तृत्व तो नहीं कहा जा सकता। बोलने वाले के विचारों या भावनाओं की छाप जब तक सुनने वालों के मन पर नहीं पड़ती या जिस बोलने में छाप डालने को सामर्थ्य नहीं है, वह वक्तृत्व नहीं, वाचालता है– यही कहा जायेगा। अर्थात् 'मुखात् क्षरति इति वक्तव्यम्' समझना ठीक नहीं।

कुछ लोग एकदम दूसरे छोर पर पहुँच जाते हैं। उनकी दृष्टि में अपने स्वयं अन्तःस्थ कोष से साहित्य का संचय करना चाहिए। इस प्रकार मन में उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विचार लिख लेने पर तद्विषयक ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए। उस विषय के जानकार व्यक्तियों से भेंट करके उनके अनुभवसिद्ध ज्ञान का संग्रह करना चाहिए।

अपनी नोट बुक को स्मरण शक्ति का विकल्प नहीं मानना चाहिए। ग्रन्थ, गुरु तथा अपनी मनन-शक्ति, ज्ञानार्जन के ये तीन प्रमुख साधन हैं। इनका अवलम्बन करते समय अच्छी स्मरणशक्ति और चित्त की एकाग्रता की क्षमता, इन दोनों की आवश्यकता है। ये दोनों शक्तियाँ कष्ट–साध्य हैं; किन्तु मूल विषय के प्रति उत्कट लगन होने पर तुलनात्मक रीति से अधिक सुगमता से साध्य की जा सकती हैं।

एकाग्रता

प्रकृति का यह सर्वसामान्य सिद्धान्त है कि अपने मन में जिस विषय के सम्बन्ध में जितनी उत्सकुता होगी, उतनी ही उसके प्रति एकाग्रता होती है। अपनी रुचि के विषय में मन अधिक लगता है और स्वाभाविक रूप से वह विषय मन में स्थान पर लेता है तथा दीर्घ काल तक स्पष्ट रूप से ध्यान में रहता है; परन्तु हर बार स्वरुचि के अनुसार विषय मिले, यह तो सम्भव ही नहीं है। ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर प्रकृति पर निर्भर रहकर काम नहीं चल सकता। इसके लिए इच्छाशक्ति का उपयोग करना होगा। वक्तृत्व के लिए स्वरुचिपूर्ण विषय न होने पर जो भी विषय मिला है, उसके प्रति प्रयत्नपूर्वक रुचि उत्पन्न करनी होगी। स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विरुद्ध ऐसा इच्छा–शक्ति का संघर्ष प्रथम तो कष्टकारक लगेगा; पर निरन्तर प्रयत्न करते रहने से यह काम सहज साध्य हो सकता है। किसी भी विशेष अवसर पर अन्य सभी विषयों से अपना ध्यान हटाकर प्रस्तुत एक ही विषय पर लक्ष्य केन्द्रित करने की शक्ति असामान्य व्यक्तित्व की पार्श्वभूमि होती है।

स्मरण–शक्ति

(अ) एकाग्रता तथा उत्तम स्मरण–शक्ति का महत्त्व भी सम–समान ही है, दुर्बल स्मरणशक्ति का वक्ता अधूरे आयुधों के साथ रण–भूमि पर उतरे योद्धा के

समान ही है। भूतकाल से अन्तर्मन के भण्डार में जो वस्तुएँ संगृहीत हैं, उनमें से जिसकी आवश्यकता हो, उस वस्तु को चेतन मन के सम्मुख प्रस्तुत करने की अन्तर्मन की शक्ति को स्मरण–शक्ति कहा जाता है। अन्तर्मन पर स्पष्ट रूप से जिस बात की छाप उभरी हो, उसका स्मरण करना सुलभ होता है। यदि छाप ही अस्पष्ट हो तो उसका स्मरण भी अस्पष्ट और कष्टसाध्य होगा। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति की, वस्तु की, घटना की या विषय की पहली मानसिक छाप सुस्पष्ट हो। एकाग्रता के समान ही स्मरण–शक्ति के लिए भी यह नियम है कि जो विषय उत्सुकता के साथ लिया जाता है, उसकी ओर मनुष्य का ध्यान पूर्ण रूप से आकृष्ट होता है। जिस ओर पूर्ण ध्यान होता है, उसी की छाप स्पष्ट पड़ती है। और जब कभी आगे इस मानसिक छाप की आवश्यकता उत्पन्न होती है, उसका पता लगाकर उसे जाग्रत मन के स्वाधीन करना अन्तर्मन के लिए सुलभ होता है। औत्सुक्य की कमी से ध्यान कम होगा, और ध्यान कम रहने से मानसिक छाप अस्पष्ट होगी तथा इस स्पष्टता की कमी से स्मरण की सुलभता भी नहीं रह सकेगी। संक्षेप में औत्सुक्य और ध्यान का जो परिमाण हो, वही मानसिक छाप की स्पष्टता का भी होता है। अतः स्मरणशक्ति का विकास करने का इच्छुक व्यक्ति को विशिष्ट वस्तु, व्यक्ति, विषय या घटना के प्रति उत्सुकता अपने मन में उत्पन्न करनी चाहिए और इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि अपना ध्यान उसी की ओर है। स्वाभाविक ढंग से यह न होता हो, तो इच्छाशक्ति के द्वारा करना चाहिए। उसके साथ ही इस कार्य के लिए मानसिक साहचर्य (ला आफ मेण्टल एसोसिएशन) नियम का भी उपयोग करना चाहिए। मन के भण्डार में एकाध बात अकेली रखने पर उसे ढूँढ़ निकालना कठिन हो जाता है; परन्तु एक मानसिक छाप का, वैसी ही दूसरी छाप के साथ सादृश्य या वैधर्म्य ध्यान में रखकर मन ही मन उन्हें एकत्र लाकर, उनकी सदृश व विधर्मी छाप की किसी एक कड़ी का स्मरण होने पर अन्य कड़ियाँ भी अपने आप स्पष्ट होकर मन के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। यह मानसिक साहचर्य विभिन्न छापों के परस्पर सादृश्य या वैधर्म्य पर आधारित होता है। इसी भाँति विभिन्न मानसिक छापों के अनुक्रमबद्ध परस्पर सान्निध्य का भी स्मरण के लिए उपयोग होता है। एक विशिष्ट अनुक्रम से विभिन्न घटनाएँ अन्तर्मन में प्रथम प्रविष्ट की गयीं, तो आगे उनमें से किसी एक घटना का स्मरण होने पर क्रमबद्ध सान्निध्य से उस घटना के पीछे की व आगे की घटनाओं का अपने आप स्मरण होता है। मानसिक साहचर्य को अवसर प्राप्त हो, इसके लिए नवीन ग्रहण किये जाने वाले किसी भी मानसिक छाप का कहीं कुछ अन्य छापों से सादृश्य या वैधर्म्य मिलता है या नहीं, यह पता

लगाना तथा ऐसा कुछ न रहने पर नये छाप को पूर्व अनुक्रमबद्ध हुए मानसिक छापों की शृंखला में या दूसरे किसी अकेले पड़े छाप के साथ क्रमबद्ध जोड़ लेने का मानसिक व्यायाम स्मरण–शक्ति की क्षमता बढ़ाने के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अर्थात् औत्सुक्य व ध्यान केन्द्रित करने की शक्ति बढ़ाकर, सभी सम्बन्धित बातों की सुस्पष्ट छाप अन्तर्मन पर स्थापित कर एवं परस्पर सादृश्य या वैधर्म्य अथवा क्रमबद्ध सान्निध्य के आधार पर मानसिक साहचर्य नियम के अनुसार प्रत्येक मानसिक छाप को अन्य पूर्व–संगृहीत छापों के साथ जोड़कर उनकी शृंखला बना लेने का अभ्यास प्रत्येक वक्ता को निरन्तर करते रहना चाहिए। साथ ही पूर्व–संगृही मानसिक छापों की कुछ तात्कालिक आवश्यकता न होने पर भी मानसिक व्यायाम के लिए बार–बार जाँच करते रहना स्मृति की तीव्रता बढ़ाने में उपयोगी होता है। स्मृति–विकास के कार्य में पुनरावृत्ति का महत्त्व विशेष है। अन्तर्मन में संचित छापों को बार–बार जाग्रत मन के सम्मुख लाकर उन्हें प्रस्तुत करते रहने से स्मृति बिल्कुल ताजी व सुस्पष्ट टिकी रहती है। एक ही समय अधिक बार इसकी पुनरावृत्ति न करते हुए बीच–बीच में मध्यान्तर के बाद उसे करते जाना चाहिए। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रारम्भ में थोड़ी कष्टप्रद प्रतीत होगी; पर एक बार मन को विवश करने पर धीरे–धीरे उसमें अभिरुचि बढ़ती जायेगी व स्मरण–शक्ति बढ़ रही है, इस प्रकार का अनुभव होने पर आत्मविश्वास भी बढ़ेगा।

(आ) एक ओर जब स्मृति–विकसन के लिए प्रयत्न जारी हो, तो दूसरी ओर भाषण के लिए आवश्यक तथ्यों एवं उद्धरणों को तैयार रखना उपयुक्त रहेगा। भाषण के विभिन्न तथ्यों को जिन कागजों पर लिखा हो, वे कागज सभा–स्थल पर ले जाने चाहिए। प्रत्यक्ष भाषण के अवसर पर उन्हें मेज पर न रखें। अपनी जेब में ही रहने दें; परन्तु उनका साथ रहना आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक होता है। सम्भव है कि उनकी ओर देखने की आवश्यकता भी न पड़े। एकाध बार देखना भी पड़े, तो कोई बात नहीं; परन्तु उन्हें हाथ में रखकर नहीं बोलना चाहिए। अपनी आँखें जिन कागजों को देखने की अभ्यस्त रही हों, वे ही प्रयोग में लाये जायें। विशेष रूप से नये कागज लाकर उन पर नहीं लिखना चाहिए; क्योंकि दृष्टि के लिए नये होने के कारण उनका त्वरित उपयोग नहीं हो पाता।

स्वर–संवर्द्धन

वक्तृत्व का प्रमुख आधार वाणी है। वह जितनी शुद्ध, सशक्त व अचूक होगी, उतना ही वक्तृत्व अधिक प्रभावी होगा, यह स्पष्ट है। इसके लिए स्वर–ज्ञान व स्वर–संवर्द्धन की साधना आवश्यक है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि स्वर–

शास्त्र की जितनी जानकारी एक गायक को होती है, उतनी ही प्रत्येक वक्ता को रहनी चाहिए; पर फिर भी उस सम्बन्ध में प्राथमिक ज्ञान भी न रहा, तो वक्ता को प्रभावी भाषण देने में कठिनाई अनुभव हुए विना नहीं रहेगी।

उच्चारण

उच्चारण की सुस्पष्टता, विभिन्न उतार–चढ़ावों का सम्यक् ज्ञान, आदि प्राथमिक जानकारी हर वक्ता के लिए आवश्यक है। अन्य सभी दृष्टियों से भाषण उत्कृष्ट होने पर भी यदि वक्ता अथ से इति तक एक ही स्वर में बोलता गया, तो एक प्रकार का नीरस वातावरण उत्पन्न होकर श्रोता को उबा देता है; उसका चित्त भाषण की ओर नहीं खिंच पाता। उलटे ऐसे भाषणों का परिणाम थोड़ी–बहुत मात्रा में लोरी के समान होता है। यदि भाषण में शब्दोच्चार अस्पष्ट, शिथिल व लापरवाही से किये गये तो भी सुनने वाले को अच्छा नहीं लगता। उलटे उच्चारण सुस्पष्ट, ठोस रहे तो श्रोता भी प्रसन्नता अनुभव करता है। यदि वक्ता इतनी धीमी आवाज में बोलता रहे कि श्रोताओं को अपनी श्रवण–शक्ति पर दबाव डालना पड़े, तो प्रतिपादित विषय अच्छा होने पर भी श्रोता ऊब जायेगा। कर्णकटु तीखी आवाज में दिया गया भाषण भी श्रवण–शक्ति पर एक अलग प्रकार का आघात कर नीरसता उत्पन्न करता है। आजकल यह माना जाता है कि सभा–स्थान या सभागृह के अन्त में बैठे श्रोता को भी सहज सुनायी दे, पर कर्कश न हो, इस ढंग से सहज रूप से बोलना चाहिए। अधिक ऊँची आवाज श्रोता के मन में कटुता उत्पन्न करेगी व धीमी आवाज समूह के अन्त में बैठे लोगों में उदासीनता निर्मित करेगी।

भाषण में विचारों के प्रवाह के अनुकूल ही स्वर होना चाहिए; कोई विशेष शब्द या भाव श्रोताओं के सम्मुख अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते समय उस शब्द या भाव को थोड़ा रुककर प्रभावपूर्ण ढंग से प्रकट करना चाहिए। पर साथ ही यह ध्यान रखना होगा कि आवश्यक शब्द या शब्द–समुच्चय पर ही बल दिया जाये और वह भी जितना आवश्यक है, उतनी ही मात्रा में। जिस शब्द से विचारों का नया मोड़ व्यक्त होता हो, तुलना दर्शायी जा रही हो, किसी एक विषय की सर्वप्रमुख कल्पना प्रकट होती हो, दो वाक्यांश, वाक्य या विचार जोड़े जाते हों या भेद अथवा विरोध उत्कटता के साथ दिखाने के लिए परस्पर विरोधी गुणों का एकत्र प्रकटीकरण होता हो, ऐसे शब्दों का उच्चारण बल देकर करना चाहिए।

विचार–भावों को मूर्त्तरूप देने के लिए स्वरों के आरोह–अवरोह का उत्तम

उपयोग होता है। अर्थात् विचार–भावों की विविधता को ध्यान में रखते हुए इस सम्बन्ध में सर्वांगपूर्ण नियमावली प्रस्तुत करना व्यावहारिक नहीं होगा; परन्तु इतना सत्य है कि दूसरे लोगों के भाषणों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा स्वयं के अनुभवों को परखने व आरोह–अवरोह के मनोविज्ञान से यह क्रमशः ज्ञात हो जायेगा। स्वरों के आरोह–अवरोह, विभिन्न स्तर एवं विभिन्न वाक्यों का निरन्तर अभ्यास करना प्रत्येक वक्ता के लिए आवश्यक है। किस बात का कहाँ, कितना तथा कैसे उपयोग किया जाये, यह तो अनुभव से ज्ञात होता है; परन्तु उपयुक्त समय पर उसके उपयोग करने की क्षमता वक्ता की आवाज में रहनी आवश्यक है। स्वर–संवर्द्धन के लिए ये सारी बातें ध्यान में रखकर प्रतिदिन नियमित रूप से ऊँचे स्वर से वाचन करना उपयुक्त होगा।

आवाज प्रखर (बुलन्द) करने के लिए निरन्तर अभ्यास के साथ ही उत्तम स्वास्थ्य की, विशेषतया स्वस्थ फेफड़ों की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से सतर्कता बरतकर, उसके लिए थोड़ा सा ही क्यों न हो; पर व्यायाम नियमित रूप से करते रहना स्वर–संवर्द्धन के कार्य का एक अनिवार्य अंग माना जाना चाहिए। व्यायाम के साथ दीर्घ–श्वसन क्रिया भी लाभदायक होगी।

वक्ता के लिए आवश्यक सूचना

ध्वनिवर्द्धक (लाउड स्पीकर)– किसी वक्ता के लिए ध्वनिक्षेपक की उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता। श्रोताओं की संख्या कम हो तो बात दूसरी है; किन्तु कई बार पहले से यह भय बना रहता है कि वक्ता अन्य सभी दृष्टियों से प्रभावी होने के बाद भी उसकी आवाज सबको सुनायी न पड़ने के कारण कहीं उसका भाषण असफल न हो जाये; किन्तु अब ध्वनिवर्द्धक के आविष्कार से यह समस्या दूर हो गयी है। ध्वनिवर्द्धक जहाँ एक ओर वक्ता के परिश्रम को कम करने में सहायक होता है, वहीं दूसरी ओर श्रोताओं को भी श्रवण–शक्ति पर अधिक दबाव नहीं डालना पड़ता। अतः वक्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह ध्वनिवर्द्धक यन्त्र के प्रयोग की विधि को भली प्रकार समझ ले।

ध्वनिवर्द्धक पर बोलते समय वक्ता को क्षेपक से एक या सवा फुट दूरी पर खड़ा रहना चाहिए। ध्वनिवर्द्धक वक्ता व श्रोताओं के बीच हो। इसके लिए वक्ता को स्थिरता का अभ्यास करना चाहिए। वक्ता कभी दायीं ओर से बायीं ओर कभी बायीं ओर से दायीं ओर मुड़कर बोलता रहे तो उसका अधिकांश भाषण

अस्पष्ट सुनायी देगा। जब उसके तथा श्रोता के बीच क्षेपक रहेगा, तभी उसकी आवाज स्पष्ट सुनायी देगी। बाकी समय क्षेपक का कुछ उपयोग नहीं हो सकेगा।

सभा में जब ध्वनिक्षेपक हो, तो ऊँची आवाज में बोलने की आवश्यकता नहीं होती। सम्भाषण में जिस स्वर में बोला जाता है, साधारणतः उसी में क्षेपक पर भी बोलना चाहिए। उसमें भी एक प्रयोग कर देखना उपयुक्त होगा। अपने किसी मित्र को सभा–स्थान पर बिल्कुल अन्त में रखकर जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि अपनी आवाज वहाँ तक ठीक प्रकार से पहुँच पाती है या नहीं। आवाज धीमी या ऊँची करने की आवश्यकता तो नहीं है?

भाषण देते समय जब वक्ता क्षेपक के बिल्कुल निकट मुँह ले जाकर बोलता है, उस समय उसे अपनी आवाज उस अनुपात में धीमी करनी चाहिए। अन्यथा कर्णकटु आवाज उत्पन्न होगी, जो श्रोताओं को अप्रिय लगेगी। वक्ता व क्षेपक के बीच का अन्तर जितना कम होगा, आवाज भी उतनी ही धीमी होनी चाहिए।

आवाज का परिमाण निश्चित करते समय सभा–स्थल या सभागृह की विशेषताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। बन्द स्थान की अपेक्षा खुले स्थान पर आवाज ऊँची रखनी पड़ती है। और, यदि सभा–स्थान के निकट सिनेमा या जलपान–गृह अथवा पान के ठेले आदि हों, तो उनके शोर को दबाते हुए तथा वहाँ के ध्वनिक्षेपकों पर होने वाले शोरगुल को भी दबाने के लिए आवाज ऊँची रखना आवश्यक है। एक ही मैदान में यदि दो परस्पर विरोधी सभाएँ हो रही हों, तो क्षेपक के होते हुए भी आवाज ऊँची रखना आवश्यक हो जाता है; किन्तु कभी–कभी कुछ सभाकक्षों की रचना ऐसी होती है कि उनमें आवाज गूँजती है या प्रतिध्वनि होती है, उसके कारण स्वर धीमा होने पर भी सभाकक्ष के अन्त में बैठे श्रोता को ठीक प्रकार से भाषण सुनायी नहीं देता। ऐसे स्थान पर आवाज तेज करने पर सुनने वाले को विभिन्न शब्द स्पष्ट व अलग सुनायी नहीं देते। अर्थात् सभा–स्थान की बनावट पर भी ध्यान रखना चाहिए। ध्वनिवर्द्धक पर सदैव बोलते रहने की आदत रहने पर आवाज कितनी ऊँची हो, अपने आप स्वाभाविक रूप से समझ में आ जाता है।

मुद्राविर्भाव व अभिनय

पहले इस ओर विशेष ध्यान दिया जाता था कि विभिन्न मनोभावों को प्रकट या उद्दीपित करने के लिए किस मुद्राविर्भाव का या अंगविक्षेपों का अवलम्बन किया जाये। इसे प्राचीन सुप्रसिद्ध वक्ताओं ने अपने समकालीन नटों से प्रयत्नपूर्वक

सीखा था। आधुनिक काल में भी मानवदीर्घ दर्पण (आदमकद शीशे) के सम्मुख खड़े होकर सम्पूर्ण भाषण का साभिनय पूर्वाभ्यास करने वाले अनेक प्रभावी वक्ता प्रसिद्ध हुए हैं। सफल वक्तृत्व के लिए योग्य अभिनय आवश्यक है। इस दृष्टि से जितना भी परिश्रम किया जाये थोड़ा ही होगा।

अभिनय का प्रभाव कुछ अवसरों पर शब्दों से अधिक होता है। बोलो मत यह बताने की अपेक्षा मुँह बन्द रखकर अँगूठे के पास की (तर्जनी) अँगुली ओठों पर सीधी रखने का अभिनय अधिक अर्थवाहक होता है। "यह कमरा छोड़कर चलते बनो", शब्दों में यह सूचना देने की अपेक्षा गम्भीर मुद्रा से कमरे में दरवाजे की ओर अंगुलि–निर्देश करना अधिक प्रभावी होगा। नेत्र फैलाकर, भृकुटि चढ़ा कर जितना विस्मय प्रकट किया जा सकता है, उतना शायद प्रत्यक्ष शब्दों से सम्भव नहीं; परन्तु इस बारे में एक सावधानी रखना आवश्यक है। प्रत्यक्ष भाषण के समय अभिनय में अस्वाभाविकता या अतिरेक नहीं होना चाहिए। योग्य अंगविक्षेपों के अभाव में भाषण का प्रभाव कम होता है, यह सच है; परन्तु अभिनय की अति कृत्रिमता का सन्देह श्रोताओं को हो गया तो भाषण का परिणाम पूर्णतः ही नष्ट हो जायेगा। संक्षेप में, अभिनय की अति या उसका पूर्ण अभाव, इन दोनों का अतिरेक न करते हुए स्वाभाविक मुद्राविर्भाव व अंगविक्षेपों का अवलम्बन करना ही उचित होगा। दूसरे किसी का अनुकरण न करते हुए अपनी शरीर–रचना, मुखाकृति, स्वभाव तथा गुण आदि का विचार कर स्वयं ही अपने भाव–प्रकाशन का ऐसा ढंग निश्चित करना ठीक रहेगा जो स्पष्ट, लाघवपूर्ण, प्रभावी और अपने स्वभाव के अनुरूप हो। इसके अतिरिक्त अन्य प्रख्यात वक्ताओं के मुद्राविर्भाव व अभिनय का अभ्यास भी करते रहना चाहिए। आजकल प्रचलित नाटक और चलचित्रों में काम करने वाले प्रसिद्ध अभिनेताओं के अभिनय का सूक्ष्म निरीक्षण 'अधिकस्याधिकं फलम्' के अनुसार अधिक लाभदायक होगा; पर अस्वाभाविकता न लाते हुए उसमें से कितना भाग आत्मसात् किया जा सकता है, यह देखना आवश्यक है।

सफल वक्तृत्व का मनश्चित्र

भाषण देते समय प्रारम्भ में जो सबसे बड़ी कठिनाई होती है, वह है प्राथमिक भय (नरवसनेस) की। एक तर्कशास्त्री ने कहा है– आगामी आपत्ति की आशंका से मन में उत्पन्न होने वाली अवस्था ही डर है। प्रारम्भ में जिसके मन में ऐसा डर उत्पन्न नहीं हुआ, वैसा एक भी वक्ता नहीं मिलेगा। यह प्रारम्भिक भय वक्तृत्व की सफलता के लिए बाधक नहीं; बल्कि पोषक होता है। जिसे इस प्रारम्भिक भय

का अनुभव नहीं, वह कभी भी अच्छा वक्ता नहीं हो सकता। उत्कृष्ट भाषण का कोई भी उदाहरण लीजिए, उसमें प्रत्यक्ष भाषण देते समय वक्ता के मन में भय की भावना का अक्षय अंश परिलक्षित होगा। कुछ प्रभावी वक्ताओं के जीवन में तो यह प्रारम्भिक भय उनके अन्तिम क्षण तक दिखायी देता है; बल्कि उनकी सफलता को इससे ही सहायता मिली है। वक्तृत्व के इच्छुक लोगों को इस प्राथमिक भय से न डरते हुए उसका स्वागत ही करना चाहिए।

परन्तु प्राथमिक भय मात्रा से अधिक न रहे, इस ओर ध्यान देते हुए उसे सीमित कर उसका उपयोग योग्य ढंग से करने का प्रयत्न करना चाहिए। सतत प्रयत्न करते रहने से वह कम होता जाता है और नष्ट भी हो जाता है। उसे कम करने के लिए धैर्य की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी स्नायुसूत्रों के नियन्त्रण की है। इस प्राथमिक भय से पीड़ित व्यक्ति धैर्यवान होता ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता; परन्तु यह कहा जा सकता है कि स्नायुमण्डल पर नियन्त्रण करने में वह असमर्थ होता है। यह नियन्त्रण बराबर किये जाने वाले प्रयत्नों से अर्थात् सतत अभ्यास से साध्य होता है।

प्रारम्भिक भय पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रतिपाद्य विषय पर दृढ़ विश्वास, अपने चारित्र्य पर आस्था, वर्ण्य विषय का ज्ञान, शब्दों का संग्रह, स्वर–ज्ञान, स्वर–नियन्त्रण विषयक स्वानुभव, श्रोता समूह व भाषण–स्थल के विषय में पूर्व–जानकारी एवं विषय के प्रति लगन की परम आवश्यकता है।

वक्तृत्व ही नहीं जीवन के किसी भी क्षेत्र में भय पर विजय प्राप्त करने के लिए अनुभवसिद्ध एक ही मार्ग है, वह है मन में दृढ़ विश्वास निर्माण करना, उसका चिन्तन करना, उसके अनुसार व्यवहार करना कि भय की अभावात्मक भावना पर मैंने जय प्राप्त कर ली है। निर्भयता का सतत अभिनय करते रहने पर, कुछ काल बाद इस अभिनय के प्रभाव से वास्तविक निर्भयता का अन्तःकरण में उदय होता है। मनोविज्ञान का यह नियम है जिस भाव का अभिनय बार–बार किया जायेगा, वह भाव कुछ काल बाद स्थायी बन जाता है। यह कथन भले ही विचित्र प्रतीत होता हो; पर उसकी सत्यता निर्विवाद है।

भाषण के समय निर्भयता का अभिनय व उसके पूर्व भाषण का मनश्चित्र– इन द्विविध उपायों का अन्तिम परिणाम वास्तविक निर्भयता में, आत्मविश्वास में और सफलता के रूप में अवश्य प्रकट होगा।

सफल वक्तृत्व का मनश्चित्र आत्मविश्वास–सम्पादन करने का अत्यन्त

प्रभावी साधन है। इस प्रकार की कल्पना एकाग्रता के साथ बारम्बार सम्मुख लानी चाहिए कि मैं अपना भाषण निर्भयतापूर्वक दे रहा हूँ, हजारों लोग मन्त्रमुग्ध हो उसे सुन रहे हैं और भाषण में प्रकट हो रहे विचारों पर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट है तथा उनकी यह धारणा बनती जा रही है कि यह अत्यन्त प्रभावी वक्ता है। इस प्रकार का काल्पनिक चित्र मानस–पटल पर बारम्बार लाना चाहिए। भय, आत्मविश्वास आदि भावनाओं का स्थान अन्तर्मन (सब कान्शेस माइण्ड) है। इसी कारण इस कल्पना–चित्र का प्रभाव अन्तर्मन पर जितना अधिक गहरा होगा, उतना ही भय के निर्मूलन में व आत्मविश्वास की जागृति में सहायता मिलेगी। अन्तर्मन को संस्कारित करने का उत्तम समय जागृति व सुषुप्ति की सन्धि–सीमा है। रात्रि में सोते समय ऐसे क्षण आते हैं कि जब मन की जागृति क्षीण हो जाती है; परन्तु मन अन्तर्मन में पूर्णतः विलीन नहीं हुआ रहता (अर्थात् निद्रावस्था नहीं होती)। ऐसे समय उपर्युक्त कल्पना–चित्र का चिन्तन करने पर उसकी छाप अन्तर्मन पर अधिक स्पष्ट होगी। प्रतिदिन रात्रि को सोते समय यह अभ्यास करना लाभदायक होगा।

इस प्रकार मानसिक अभ्यास रखने पर व उसका फल वक्तृत्व की सफलता के रूप में मिलते रहने पर शनैः–शनैः वक्ता का भय कम हो जाता है और आत्मविश्वास बढ़ता है। इस सफलता के अनुभव की पुनरावृत्ति होती रही, तो वह एक पूर्ण विकसित वक्ता बन जाता है।

सहानुभूतिपूर्ण वृत्ति

सामान्यतः जनता के बारे में और विशेषकर जिस श्रोता–समुदाय के सम्मुख भाषण देना हो उसके बारे में, प्रेम की, आत्मीयता की भावना वक्ता के मन में रहनी चाहिए। साधारणतः यह दिखायी देता है कि श्रोताओं के बारे में जो भावना वक्ता के मन में होती हैं, उसी का प्रतिरूप श्रोताओं की ओर से भी मिलता है। सामने बैठे लोग विरोधी मत के हों, तो भी उनके प्रति सहानुभूति रखकर वक्ता यदि बोलता रहे, तो उनके विरोध की तेजी अपेन आप ही क्षीण हो जाती है। इसके विपरीत श्रोता तटस्थ वृत्ति के हों; पर वक्ता अपने मन में, अपनी विद्वत्ता के उपरान्त, उनके प्रति उदासीनता, उपेक्षा, उपहास, तुच्छता, तिरस्कार, विद्वेष आदि की भावना रखकर भाषण करने लगे, तो वह भाषण अन्य दृष्टि से अच्छा होने पर भी उससे श्रोता के मन में वक्ता के बारे में भी उसी प्रकार की विपरीत भावना निर्मित होती है। अपनी बारी आने के पूर्व जिन–जिन वक्ताओं के भाषण होने हों, उनके प्रति आदर की भावना न अपनी ओर से उनके भाषणों के प्रति औत्सुक्य प्रकट

करना भी श्रोताओं पर अनुकूल परिणाम करता है। दूसरों का भाषण जारी रहते उस ओर ध्यान न देते हुए इधर–उधर देखने वाला वक्ता श्रोताओं की ओर से तालियों द्वारा उसका स्वागत किये जाने की सम्भावना होती है। ऐसे अवसर पर उनके द्वारा प्रदर्शित प्रेम के प्रति व सद्भावना के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए किंचित् आगे झुकना, विनम्र स्मित हास्य करना या ऐसे ही योग्य अन्य आविर्भावों को अपनाने पर श्रोता के मन में अपनत्व उत्पन्न होता है। भाषण के प्रारम्भ में ही पूर्व गौरवपूर्ण उल्लेख का तथा अपना परिचय कराते समय प्रकट किये गये प्रशंसोद्गारों के सन्दर्भ में भी यह कहने पर कि 'वास्तव में मैं इस स्तुति का पात्र नहीं हूँ– इसका मुझे ज्ञान है', उसका परिणाम अपने प्रति श्रोताओं के मन में सहानुभूति उत्पन्न करने में सहायक होता है। स्थानीय विशेषताओं के बारे में भी यही बात लागू होती है। अपने भाषण में, जो स्थान हो, उस क्षेत्र के प्रसिद्ध महापुरुषों का, उस धार्मिक स्थान का, वहाँ पर घटित किसी प्रसिद्ध घटना या अन्य स्थानीय विशेषता का आत्मीयतापूर्ण उल्लेख प्रारम्भ में ही आदर के साथ करने पर वक्ता व श्रोता के बीच निकटता स्थापित होने में सहायता होती है; परन्तु यह सब हृदय से होना चाहिए। उसके लिए बीच–बीच में उपर्युक्त भावना जाग्रत करने मात्र से काम नहीं चलेगा। विनम्रता, आस्था, अपनत्व आदि भावनाओं का बुद्धिपुरस्सर सतत अभ्यास कर, अपने मन की रचना ही उस ढंग की हो– यह प्रयत्न किया जाना चाहिए। भाषण के दौरान एक–दो बार अध्यक्ष का भी ध्यान रखना चाहिए, उनका उल्लेख करना चाहिए। इससे सभा में सुसंस्कृत एवं अनुशासन का वातावरण उत्पन्न होता है तथा वक्ता श्रोताओं की सहानुभूति प्राप्त करता है। अध्यक्ष के प्रति दुर्लक्ष्य करने का परिणाम वक्ता के प्रतिकूल होता है।

उत्साह

वक्ता की आकर्षण–शक्ति बढ़ाने का एक प्रमुख साधन उसका उत्साह हैं। उसके लिए एक ओर शरीर की सुदृढ़ता, भाषण के पूर्व की विश्रान्ति, दीर्घश्वसन आदि तथा दूसरी ओर विषय के प्रति वक्ता की स्वयं की उत्सुकता आवश्यक है। शरीर और मन से थका वक्ता श्रोताओं को कभी आकर्षित नहीं कर सकता। उसी प्रकार, वक्ता के मन में वर्ण्य विषय के प्रति पर्याप्त उत्सुकता नहीं होगी, तो वह श्रोताओं के मन में भी उत्सुकता–निर्माण नहीं कर सकेगा। विषय के सम्पूर्ण ज्ञान के महत्त्व के समान ही उत्साह का भी अपना महत्त्व है।

यह सर्वोत्तम है कि वक्ता के मन में स्वाभाविक रीति से उत्साह उत्पन्न हो;

परन्तु कुछ कारणों से यदि उत्साह जाग्रत होना सम्भव नहीं हो पाये, तो और एक नियम को भी ध्यान में रखना ठीक होगा। निर्भयता के सम्बन्ध में उल्लिखित सिद्धान्त यहाँ भी लागू होगा। उत्साह का अभिनय करते रहने पर उत्साह अपने आप जाग्रत होगा व अन्त में वह स्वभाव का एक भाग बन जायेगा।

भाषण के पूर्व

भाषण के पूर्व जितना सम्भव हो, शारीरिक व मानसिक विश्वास सम्पादन किया जाये। उससे चित्त प्रफुल्लित होगा, परिणामस्वरूप मुख के प्रसन्न भावों से भाषण के समय प्रभावी व्यक्तित्व प्रकट हो सकेगा।

भाषण के समय पेट हल्का रखना चाहिए। भाषण के पूर्व गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए। आवश्यकता ही हो तो फलाहार या हल्का भोजन करना चाहिए।

भोजन के पूर्व यदि भाषण की तैयारी कर चुके हैं, तो उसे एक बार देख लेना चाहिए। वास्तव में भाषण पूर्व–तैयार रहना ही चाहिए। पर ऐन समय पर इसे नहीं करना चाहिए, अन्यथा सभा–स्थान की ओर जाते समय मस्तिष्क में थकावट आ जायेगी। इस थकावट से बचने के लिए मन को दूसरी ओर बातों में लगाना चाहिए। उससे मन–मस्तिष्क में शान्ति आती है।

सभा–स्थल पर व्यवस्थित वेश–भूषा में ही जाना चाहिए। जिन वस्त्रों के पहनने के अभ्यस्त हों, वही वस्त्र पहनने चाहिए। सभा के अवसर पर नये ढंग के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए; क्योंकि उससे अपना ध्यान प्रतिपाद्य विषय की ओर अधिक तन्मयतापूर्वक स्थिर नहीं रह पाता, जिसके कारण एकाग्रता भंग होती है। यदि नवीन पोशाक धारण करना ही हो, तो भाषण के दिन के पूर्व उसे पहनकर उसकी आदत डाल लेनी चाहिए।

वेश स्वच्छ, सुघड़ एवं सदभिरुचि के अनुकूल हो। अधिक तड़क–भड़क वाले कपड़े नहीं प्रयोग करने चाहिए। कपड़ों के कारण श्रोताओं के मन में यह बात नहीं बैठने देनी चाहिए कि वक्ता के पास उसकी प्रतिभा से अधिक कपड़े का महत्त्व है।

भाषण के पूर्व प्राथमिक भय से उत्पन्न होनी वाली मन की विचलित अवस्था न हो तथा चित्त की एकाग्रता रहे, इसके लिए, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, भाषण के लिए खड़े होने के पूर्व तीन–चार बार दीर्घश्वसन कर लेना चाहिए।

उसी प्रकार भाषण के लिए खड़े होने के पूर्व अपने अमूर्त आदर्श या मूर्त प्रतीक अथवा पूज्य व्यक्ति का स्मरण करना चाहिए। बड़े लोग प्रत्येक भाषण के पूर्व मन ही मन परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं।

भाषण करते समय

मञ्च पर पैर रखते ही वक्ता का श्रोता के साथ सम्बन्ध प्रारम्भ हो जाता है। उनकी उत्सुक आँखें वक्ता पर लगी रहती हैं। इसी कारण अपनी बारी आने तक सतर्कता बरतनी चाहिए। बेकार इधर–उधर देखना, अंगुलियों से खेलना, मञ्च पर अन्य लोगों से बोलते रहना, अपनी बैठक की स्थिति बदलते रहना, लौंग–सुपारी चबाते जाना आदि क्रियाओं से भाषण के पूर्व ही जनता की सहानुभूति खो जाती है। सुस्थिर बैठकर पूर्व–वक्ताओं के भाषण उत्सुकता के साथ एवं आदर से सुनने वाला वक्ता ही श्रोताओं की सहानुभूति प्राप्त करता है।

भाषण देने के लिए खड़े रहते समय दोनों पैरों पर समान भार देकर खड़ा रहना चाहिए। कभी एक पैर पर तो कभी दूसरे पैर पर भार देकर बोलते रहने की पद्धति श्रोताओं के मन में अनुकूलता–निर्माण करने में बाधक होती है। दोनों पैरों के बीच स्वाभाविक अन्तर रहना चाहिए। वक्ता को स्वाभाविक स्थिति में सीधे खड़ा रहना चाहिए। उसके खड़े रहने में आत्मविश्वास व विनम्रता के दर्शन होने चाहिए। अहंकार या आडम्बर (शानशौकत) प्रकट नहीं होना चाहिए। खड़े रहने के लिए मेज, कुर्सी या अन्य किसी वस्तु का आधार लेने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। उससे वक्ता के आत्मविश्वास के प्रति सन्देह होने लगता है।

भाषण के लिए खड़े होने पर अपने बाल ठीक करने या बालों पर हाथ फेरने आदि की क्रियाओं से विरत रहना चाहिए। वेश या केश–रचना के बारे में जो कुछ सावधानी बरतनी है, वह मञ्च पर आने के पूर्व ही बरतनी चाहिए। उसी प्रकार बार–बार मूछों पर हाथ फेरना, नाक खुजलाना, नाखून निकालना, चश्मा निकालकर हाथों में लेकर पुनः नाक पर रखना, ओठों पर जीभ फेरना, सिर खुजलाना, जेब के अन्दर हाथ डालना व निकालना, कोट के बटन के साथ खेलना, एकाध छोटी वस्तु हिलाते रहना या एक हाथ को दूसरे हाथ से झुलाते रहना, ध्वनिवर्द्धक को हाथ में पकड़कर दायें–बायें घुमाना, एक–एक पैर को क्रमशः सामने टिकाते रहना अथवा पीछे हटाना, रूमाल से बार–बार चेहरा पोंछना, खाँसी न होने पर भी खाँसना, आँखें मलना, रूमाल जेब से बाहर निकालना व पुनः जेब में डालना, टोपी आगे–पीछे सरकाते जाना, धोती या पैंट प्रथम थोड़ी ढीली कर पुनः ठीक करना आदि अपनी इच्छानुसार व्यवहार नहीं करने चाहिए। इन आदतों से विरत होते समय भी प्रारम्भ में ऐसा लगेगा कि अपनी स्मरणशक्ति या एकाग्रता में बाधा उत्पन्न हो रही है; पर आगे चलकर यह भावना अपने आप

दूर हो जायेगी।

भाषण के लिए खड़े रहने पर वक्ता को श्रोताओं की दृष्टि से एकदम दृष्टि मिलाकर दृष्टि चारों ओर घुमानी चाहिए। अन्त तक दृष्टि श्रोताओं की दृष्टि से मिली होनी चाहिए। आँखें आत्मा की खिड़कियाँ हैं। वक्ता वाणी के द्वारा श्रोताओं से जितना बोलता है, उतना ही दृष्टि के द्वारा भी बोलता है। वक्ता के मन व आत्मा का प्रतिबिम्ब आँखों द्वारा श्रोता के मन पर पड़ता है। एक क्षण के लिए भी श्रोताओं से अपनी दृष्टि नहीं हटानी चाहिए। अर्थात् भूमि (जमीन) की ओर या अपनी ओर देखना सर्वदा टालना चाहिए। दृष्टि की स्थिरता व प्रफुल्लता प्राप्त करने के लिए पहले त्राटक नामक योग–विधि को अपनाया जाता था। अंग्रेजी में इसी को 'गेजिंग' कहते हैं।

कुछ वक्तताओं को अध्यक्ष की ओर तथा मंच पर बैठे अन्य लोगों की ओर बार–बार देखकर अपने वक्तव्य को उनकी सम्मति प्राप्त किये बिना आगे बोलने की प्रेरणा ही नहीं होती। फलतः वे अध्यक्ष की ओर या मंच की ओर बार–बार मुड़कर देखते हैं। कुछ व्यक्तियों को ऐसा ही प्रोत्साहन प्राप्त करने के लिए अपने प्रिय व्यक्ति की ओर बार–बार देखने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसका परिणाम श्रोताओं पर अनुकूल नहीं होता। अतः इस प्रकार की आदतों को छोड़ना ही चाहिए।

अभिनय में काट–छाँट

मुद्राभिनय तथा हावभावों पर इसके पूर्व विवेचन किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए। यथासम्भव एक ही प्रकार के भाव, प्रहसन या मुद्राभिनय की पुनरावृत्ति न हो ताकि प्रत्येक अभिनय या हाव–भाव विषय–प्रतिपादन के लिए या रसोत्कर्ष के लिए सहायक बन सके। यदि उससे ऐसी सहायता मिलती, तो आदतन किया गया उसका प्रयोग नीरसता का कारण बनेगा। मुद्राभिनय व हावभाव में योग्य काट–छाँट उसका प्रभाव बढ़ाने में सहायक होती है।

काट–छाँट शब्दों में

वक्तृत्व की सफलता में काट–छाँट बहुत महत्त्वपूर्ण है। अभिनय में काट–छाँट, शब्दों में काट–छाँट, समय में काट–छाँट भाषण को प्रभावी बनाने में सहायक होती है। भाषण में अनावश्यक शब्द, अनावश्यक पुनरुक्ति, अनावश्यक विनोद तथा अन्य अनावश्यक बातें न होने पायें, इस बात की सतर्कता बरती जानी चाहिए। भाषण

की पूर्व तैयारी करते समय यदि सारा भाषण लिखा जाये, तो ऐसा दिखायी देगा कि उसमें से कुछ वाक्य मूल भाषण के अर्थ–प्रवाह या सौन्दर्य को बाधा न पहुँचाते हुए हटाये जा सकते हैं। कुछ वाक्यों की पुनर्रचना करके संक्षेप में लिखा जा सकता है। शब्द या वाक्य कम करने में निर्दय बनना चाहिए। कभी–कभी ऐसा होता है कि वक्ता कुछ शब्द वाक्य के निरूपण में सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं, ऐसी स्थिति को छोड़कर संयम के साथ उनका उपयोग टाला जा सकता है। कुछ अलंकार–प्रिय वक्ता यमक, अनुप्रास आदि चमत्कारी शब्दों के प्रयोग में अति कर देते हैं। सदृश शब्दों में एक और पर्यायवाची शब्द का अकारण ही प्रयोग कर देते हैं। उससे शब्दों का अपव्यय तो होता ही है, साथ ही निरर्थकता भी प्रकट होती है। इसे प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए। 'कम से कम और आवश्यक शब्द'– इसे ध्येय–वाक्य को वक्ता सदैव अपने सम्मुख रखे। पहले ऐसा कहा जाता था कि 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यते वैय्याकरणः।' वास्तव में वक्ता की मनोवृत्ति ऐसी ही होनी चाहिए। भाषण का प्रभाव उसकी प्रदीर्घता से नहीं होता। संक्षिप्त शब्दों से भाषण का सौन्दर्य कैसे बढ़ता है, इसकी जानकारी अब्राहम लिंकन के सुप्रसिद्ध गैटिसबर्ग के भाषण को पढ़ने से ज्ञात होगी। यह चिरपरिणामकारी भाषण केवल दस वाक्यों का है। दो मिनटों में वह समाप्त हुआ। उस कारण एक श्रोता द्वारा उस जमाने के पुरानी पद्धति के कैमरे से लिंकन की फोटो खींचने का प्रयत्न सफल नहीं हो सका। कैमरा चित्र उतार सके, इसके पूर्व ही भाषण समाप्त हो चुका था।

समय की बचत

कई बार सभा-संचालक भाषण की कालावधि निश्चित कर देते हैं। ऐसे अवसरों पर निश्चित समय में भाषण समाप्त करना ही उत्तम होता है। निर्धारित समय में ही भाषण के सभी मुद्दों की योजना करनी चाहिए। जहाँ भाषण का समय निर्धारित न किया गया हो, वक्ता को स्वतः अपने ऊपर अनुमान से बन्धन लगा लेना चाहिए। मोटे तौर पर इसके लिए एक नियम ध्यान में रखना चाहिए। भाषण औचित्य की सीमा पार करे, इसके पूर्व ही उसे समाप्त करना चाहिए। भाषण प्रास्ताविक हो तो वह कम से कम समय में समाप्त हो; परन्तु मुख्य वक्ता के भाषण को योग्य मोड़ देने का दायित्व यदि प्रास्ताविक वक्ता पर हो, तो उसे अधिक समय लेना चाहिए। पूर्व में यह पद्धति थी कि समारोप के भाषण में पहले सम्पन्न हुए सभी भाषणों का उल्लेख किया जाता था; परन्तु वह अनावश्यक ही है। अस्तु, उनका स्पर्श करते हुए, सारांश व प्रमाणबद्ध स्वरूप ही समारोप के

भाषण में प्रस्तुत करना उचित होगा। अन्य स्थिति में इस पद्धति को न अपनाया जाये। यदि पूर्व–वक्ता द्वारा अपने विषय का प्रतिपादन करते समय कोई प्रश्न (मुद्दा) अछूता रह गया हो तो इसका उल्लेख समारोप के भाषण में किया जाना चाहिए; परन्तु ऐसे उल्लेख से प्रमुख वक्ता के भाषण का प्रभाव कम होने का भय हो तो उसे जान–बूझकर टाला जाये। सामान्यतः समारोप का भाषण न्यूनतम शब्दों का रहे। मुख्य भाषण उत्कृष्ट रहा हो तो समारोप दो–तीन वाक्यों का ही हो। अन्यथा मुख्य भाषण की छाप को श्रोता के मन से धुँधली करने का आक्षेप समारोप के इस लम्बे भाषण पर आता है।

मुख्य वक्ता के पूर्व बोलने वाले उपवक्ताओं को यह विवेक रखना चाहिए कि मुख्य भाषण के लिए साधारणतः कितना समय मिलेगा और उपवक्ताओं की संख्या कितनी है ? इस आधार पर अपना समय निश्चित करना चाहिए। मुख्य वक्ता को आवश्यक समय मिले। अधिक संख्या में उपवक्ताओं के लम्बे भाषण श्रोताओं को रुचिकर नहीं होते; क्योंकि वे मुख्य वक्ता का ही अधिकांश समय खा जाते हैं। उससे सभा की शोभा नष्ट हो जाती है। भले ही समय का बन्धन पूर्व–निर्धारित न रहे, फिर भी श्रोताओं की उत्सुकता व धैर्य का अनुमान कर भाषण की कालावधि निश्चित करें। श्रोता घड़ी की ओर देखें, इधर–उधर दृष्टि घुमाने लगें और आपस में बात–चीत करने लगें, तो वक्ता को समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक देरी हो चुकी है। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देना ही उत्तम है। भाषण का चरमोत्कर्ष (क्लाइमेक्स) जहाँ हो, वहाँ से उसका अन्त निकट होना चाहिए। भाषण का प्रभाव लम्बाई पर निर्भर नहीं रहता। भाषण में श्रोताओं की उत्सुकता बनाये रखते हुए उन्हें टिकाये रहना चाहिए तथा उनके धैर्य की क्षमता भाषण के विस्तार से सुनियोजित होनी चाहिए।

गति की काट–छाँट

आवेश में आने पर मनुष्य तेजी से बोलने लगता है; परन्तु साधारणतः वक्ता को धीमी व विरामयुक्त भाषण–शैली का उपयोग करना चाहिए। इससे वक्ता के विचार ग्रहण करने का अवकाश श्रोताओं को मिलता है। आजकल कुछ सामाजिक कार्यकर्त्ता अतिशीघ्रता से एवं ऊँची आवाज में बोलना ही सफलता की कुञ्जी मानने लगे हैं; परन्तु यह ठीक नहीं है। विरामयुक्त शैली वक्ता के मत का सन्तुलन टिकाये रखने में सहायक होती है। विषय पर एवं श्रोता पर उसका नियन्त्रण रहता है और श्रोताओं को भी विषय समझने के लिए अवकाश मिलता है।

पुराने काल के अधिकांश वक्ता इसी शैली का उपयोग करते थे। लार्ड पामर्स्टन के बारे में कहा जाता है कि उनकी शैली दीर्घ विरामपूर्ण थी। एक बार एक चुनाव–सभा में वे भाषण कर रहे थे कि कुछ श्रोताओं ने बीच में ही उठकर पूछा, "महाशय ! अमुक–अमुक विधेयक का समर्थन आप संसद में करेंगे ?" पामर्स्टन ने अपनी उसी दीर्घ विराम युक्त शैली में कहा, "वैल, आई विल– (इसके साथ ही श्रोता–समुदाय के एक भाग से तालियों की गड़गड़ाहट हुई)– टेल यू" (इस शब्द के साथ समूह के दूसरे छोर में तालियाँ बजीं और फिर तो सर्वत्र हँसी ही फूट पड़ी)। सुप्रसिद्ध अमेरिकी वक्ता व वीर हेनरी के बारे में भी ऐसी ही कथा प्रसिद्ध है। वर्जीनिया की विधान–सभा में इंगलिश संसद की ओर से आये स्टाम्प एक्ट का विरोध करते हुए हेनरी ने घोषणा की कि वर्जीनिया की विधान–सभा पूर्णतः स्वतन्त्र है। संसद या राजा का उस पर किंचित् भी अधिकार नहीं। स्वतन्त्र जनों पर उन विधानों का, जो उन्होंने स्वयं नहीं बनाये, बन्धन नहीं हो सकता। इसके बाद थामस जैफर्सन व जार्ज वाशिंगटन को विस्मित करते हुए हेनरी ने चीखकर कहा– "सीजर हैड हिज ब्रूट्स, चार्ल्स द फर्स्ट हिज ग्रौमवैल एण्ड जार्ज द थर्ड... (यहाँ उसने विराम लिया। वह जानता था कि विराम कहाँ लिया जाये। उसके रुकते ही सभागृह के कुछ भागों से 'ट्रैजन' 'ट्रैजन' का शोर मचा। उसके बाद हेनरी ने शान्ति के साथ वाक्य पूरा किया)... विल प्राफिट बाई देअर एक्जाम्पल" और इस प्रकार विराम के बाद पूर्ण किये वाक्य से सम्पूर्ण सन्दर्भ को ही अनपेक्षित व विस्मयजनक मोड़ देकर उसने अन्तिम वाक्य का उच्चार किया, "इफ दिस बी ट्रैजन, मेक द कॉस्ट आफ इट।"

मुद्दों की काट–छाँट

भाषण में अनेक मुद्दे रखने पड़ते हैं; परन्तु एक ही समय विभिन्न मुद्दों को रखने से श्रोताओं के लिए भाषण समझना कठिन हो सकता है। एक समय एक ही मुद्दा लेकर उसका पूर्ण विवेचन करना चाहिए तथा ऐसी सतर्कता बरतनी चाहिए कि भाषण के प्रवाह में उसकी पुनरावृत्ति की बारी न आये। प्रतिपाद्य मुद्दों को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त प्रमाण, दृष्टान्त या उदाहरण देना समझने की दृष्टि से उपयोगी रहता है। इससे वर्णित मुद्दे की कल्पना तो स्पष्ट होती ही है, बाद के विवेचन को ग्रहण करने के लिए मानसिक तैयारी करने का समय भी श्रोताओं को मिलता है।

सुबोध व सरल विवरण सुस्पष्ट विचारों का प्रतिबिम्ब होता है। जिसके

विचारों में गड़बड़ी है, उसके विवरण में भी गड़बड़ी है। अतः इसके लिए वक्ता को स्वयं भी वर्ण्य विषय को विश्लेषणात्मक पद्धति से अलग-अलग भाग करके समझ लेना चाहिए। श्रोताओं पर एकदम अनेक कल्पनाओं व तर्कों की बौछार कर उन्हें विचलित न करते हुए, अपना एक–एक मुद्दा उन्हें पूर्ण रूप से समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। समझ में न आने वाले अनेक तर्कों की अपेक्षा ठीक से समझाये गये थोड़े से तर्क अधिक सफल सिद्ध होते हैं।

विनोद की काट–छाँट

भाषण में विनोद का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है; परन्तु अनुपयुक्त अवसर पर तथा किसी भी प्रकार से उसका प्रयोग करना उचित नहीं होता। विनोद उत्पन्न करने के लिए वक्ता क्या बोलता है, इसकी अपेक्षा वह कैसे बोलता है, इसका महत्त्व अधिक है और उस प्रसंग पर वह किस प्रकार बोलता है, यह वक्ता की मनोरचना पर निर्भर है। अभिजात विनोदी वक्ता ने जो बात कही हो, विनोदी न रहने वाले वक्ता द्वारा वह बात शब्दशः उसी भाँति बतायी गयी, तो उसका प्रभाव उस वक्ता के समान रसयुक्त नहीं होगा। विनोद से वक्ता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सम्बन्ध होता है। अतएव स्वभावतः जो विनोदी हो, उसे इस देन के विकास के लिए विचार करना चाहिए; परन्तु जिनकी मनोरचना ऐसी नहीं है, उन्हें नकल करने के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। ऐसे वक्ता को विनोद पर बल न देते हुए, सहज रूप में भाषण के दौरान जहाँ जितना सम्भव हो, उतना ही विनोद संयमित रीति से करना चाहिए।

यह सच है कि जहाँ हास्य रस को कतई अवसर नहीं मिलता, ऐसा भाषण श्रोताओं को भारी अनुभव होगा; परन्तु विनोद उत्पन्न करने के लिए वक्ता के सारे प्रयत्नों के उपरान्त श्रोता वर्ग अशान्त हो उठे तथा समझदार लोग वक्ता के निष्फल प्रयत्नों पर मन ही मन तरस खाते रहें– इस प्रकार का दृश्य भाषण की असफलता का द्योतक है। विनोद दुधारा शस्त्र है, यह ध्यान में रखना होगा। भाषण के प्रारम्भ से ही विनोद उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करना चाहिए; क्योंकि श्रोताओं व वक्ता की आंशिक एकात्मकता उत्पन्न हुए विना विनोद का रस ग्रहण करने की स्थिति में श्रोता नहीं रहेंगे। विनोद करने के लिए निम्नस्तरीय बातों पर आने या अश्लील कल्पना का उच्चारण करने का मोह टाला जाना चाहिए। निम्न स्तर पर दूसरों का मजाक उड़ानेवाला वक्ता अधिकांश श्रोताओं का आदर नहीं पाता। मजाक उड़ाना ही है तो अपना उड़ाओ। उसका अनुकूल

परिणाम होता है। सबसे महत्त्व की बात यह है कि विनोद के लिए विनोद– इस सूत्र को अपनाना नहीं चाहिए। एकाध विनोद करने पर श्रोताओं में हँसी फूटी कि वक्ता को जोश आ जाता है तथा वह विनोद के लिए विनोद करने लगता है और अपने को विदूषक बना लेता है। विनोद उतना ही किया जाये, जितना कि मूल प्रतिपादन के सूत्र को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हो तथा उसके लिए जो सहायक न हो, ऐसे विनोद का त्याग करना चाहिए।

आह्वानात्मक वाक्यों को टालिए

कोई बात कहने के पूर्व वक्ता को 'अमुक रहस्य की बात बताऊँगा' या 'मैं अब आपको मनोरंजक कथा बताऊँगा', ऐसी पूर्व–सूचना नहीं देनी चाहिए। उससे श्रोता के मन में नकारात्मक भाव उदय होता है। जो बात श्रोतागण बिना पूर्व–सूचना के सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं, वही इस पूर्व–सूचना के कारण निरीक्षक बुद्धि से उसका विश्लेषण करने लगते हैं। कोई बात सिद्ध करने के पूर्व मैं अमुक सिद्धान्त की सत्यता आपको प्रमाणित करता हूँ'– ऐसा न कहे। उससे भी श्रोताओं की प्रतिकार–भावना जाग्रत होती है। सीधे ढंग से, जो बात, सिद्धान्त या मुद्दा स्पष्ट करना है, कहना चाहिए। पूर्व-घोषणा करने के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। उसी प्रकार बोलते समय 'मेरा मन' या 'आप' अथवा 'आपका कर्त्तव्य' आदि का प्रयोग न करते हुए अपनी शब्द-रचना ऐसी करनी चाहिए कि अपने शब्दों में वक्ता व श्रोता दोनों का समावेश हो, ताकि दोनों के बीच का भेद मिट जाये, दोनों एकरूप हो जायें।

सभाओं के विभिन्न रूप

वर्ग–सभा– जिस समय विज्ञ श्रोतावर्ग कुछ ग्रहण करने की जिज्ञासा या उत्कण्ठा लेकर उपस्थित हुआ हो, अर्थात् श्रोताओं का ध्यान भाषण की ओर प्रारम्भ से ही केन्द्रित हो, उस समय वर्ण्य विषय स्पष्ट करने के लिए दिया जाने वाला भाषण प्राध्यापकीय ढंग का होता है। अर्थात् इस भाषण में विषय प्रस्तुत करने की पद्धति शान्त, धीमी तथा तर्क पर आधारित होनी चाहिए। एक मुद्दे से अनिवार्यतः दूसरा मुद्दा उत्पन्न हो व उतनी ही अनिवार्यता से आगे के तर्क से तथा निष्कर्ष के आधार पर श्रोताओं के विचारों को प्रभावित करने का प्रयास करना चाहिए।

ऐसे अवसरों पर भीमसेन सरीखे आवेश का आश्रय न लेते हुए विरामपूर्ण भाषण–शैली अपनाना अधिक लाभदायक होता है। महत्त्वपूर्ण शब्दों, तर्कों अथवा वाक्यों पर बल देना असंगत नहीं; पर चमत्कारपूर्ण शब्द–रचना, कहावतों, मुहावरों

आदि का प्रयोग न करते हुए उनके स्थान पर सुरुचिपूर्ण शब्द-प्रयोग एवं स्वाभाविक, तर्कसंगत व विश्लेषणात्क विवरण पर ही अधिक बल देना उचित होगा।

साधारणतः ऐसी सभाओं के श्रोताओं की शिक्षा व समझदारी का स्तर ऊँचा होता है और वे सभा में अनुशासन का पालन करने का स्वयमेव प्रयत्न करते हैं। सामान्य सार्वजनिक सभा से सभी सभाओं को पृथक् रूप से पहचानने के लिए इस स्वरूप को हम वर्ग–सभा की संज्ञा दें।

रचना–भेद– वर्ग–सभा में प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित सभी मुद्दों को तथा अन्य जानकारी को तर्कयुक्त, सुसूत्र व विस्तृत ढंग से रखा जाना चाहिए। सार्वजनिक सभा में सभी मुद्दों को और सम्पूर्ण जानकारी को प्रस्तुत न करते हुए ऐसे चुने हुए मुद्दों को ही, जो प्रभाव बढ़ाने में सहायक हों, भाषण में समाविष्ट करना चाहिए। सार्वजनिक भाषण में साधारणतः यह उद्देश्य नहीं रहता कि विषय के सभी अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान श्रोताओं को हो जाये। अपना प्रतिपादित विषय एवं निष्कर्ष श्रोताओं की समझ में आ जाये– उनके गले उतर जाये, मात्र यही प्रमुख उद्देश्य रहता है। अतएव ऐसे प्रसंगों पर श्रोताओं का बौद्धिक–स्तर देखते हुए, उनके पल्ले पड़ सके– उसी स्तर पर भाषण किया जाना चाहिए। अनेक छोटे–बड़े मुद्दों को विस्तार के साथ समझाने का यत्न करने पर साधारण बुद्धि के श्रोताओं के मन पर प्रायः किसी भी विषय की स्पष्ट व प्रभावी छाप नहीं पड़ती। अतः मुद्दे व जानकारी चुनी हुई हो। उसमें तार्किकता के साथ मनोरंजन तथा रसोत्कर्ष को भी स्थान हो। इसके लिए मुद्दों का स्पष्टीकरण करने वाले उपयुक्त उदाहरणों का, कथा, उपमाओं तथा दृष्टान्तों का भाषण में बहुतायत से उपयोग किया जाये। इससे सामान्य श्रोता का ध्यान भाषण की ओर खिंचा रहता है तथा विषय भी अधिक स्पष्ट होता है; परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाये कि श्रोताओं पर अपनी बात का प्रभाव पड़ रहा है, इसका अनुभव होने पर सन्तुलन खोकर केवल मनोरंजन के लिए वैसी ही बातों को दोहराने की भूल न की जाये। प्रत्येक कथा या उदाहरण भाषण के प्रवाह को आगे ले जाने वाला ही हो। केवल मनोरंजन के कारण प्रवाह रुकना नहीं चाहिए।

सभा के व्यवस्थापकों के लिए सूचनाएँ

सभा–स्थान का आकार व मञ्च

सभा के लिए मैदान या सभागृह का चुनाव करते समय आने वाले श्रोताओं की संख्या के बारे में साधारण अनुमान किया जाना चाहिए और उस संख्या का

समावेश हो सके, उतना ही बड़ा सभागृह चुना जाना चाहिए। श्रोताओं की संख्या के परिणाम से अधिक बड़ा सभागृह चुने जाने पर सभा का दृश्य बहुत बुरा दिखायी देगा। उसके विपरीत यदि संख्या के परिमाण में सभागृह छोटा पड़ा तो सभा का दृश्य उत्साहजनक प्रतीत होगा। खुले मैदान के बारे में भी यह तथ्य लागू होता है। एकाध बार बड़े मैदान पर छोटे जनसमूह वाली सभा लेने का अवसर आने पर मैदान से लगकर जो मार्ग हो उसके निकट मंच की स्थापना की जाये। मंच का मुख मार्ग की दिशा में या उसके विरुद्ध न रखकर उसके समानान्तर रखा जाये। मुख्य मार्ग के दूसरी ओर जहाँ मैदान खुला होगा, वहाँ (श्रोताओं के अभाव में) प्रकाश कतई न रहे या बहुत कम रहे, ऐसी अवस्था की जाये। यदि थोड़ा–बहुत प्रकाश उस ओर हो तो उसे दबाने के लिए मञ्च के सामने के श्रोताओं से मार्ग पर अधिक प्रकाश की योजना की जाये। यदि ऐसा अनुमान हो कि श्रोतृसमूह पूरे मैदान को घेर लेगा, तो मंच मुख्य मार्ग के दूसरी ओर मैदान के किनारे के निकट, यथासम्भव किनारे के मध्य में मुख्यमार्ग की ओर मुख कर स्थापित किया जाये। सभागृह में मंच मुख्य प्रवेश–द्वार की ओर मुख करके सामने की ओर की दीवार से सटा हो। मंच की ऊँचाई सभा–स्थान के आकार व श्रोताओं के अपेक्षित विस्तार से मेल खाती हुई हो। सभा जितनी बड़ी होगी, मंच की ऊँचाई भी उतनी अधिक हो। ध्यान इस बात का रहे कि मंच और सभा के विस्तार का सम्बन्ध 'मियाँ मुट्ठी भर और दाढ़ी हाथ भर' को चरितार्थ न करे। सभा छोटी हो तो मंच की अपेक्षा नीचे भूमि पर श्रोताओं के साथ खड़े होकर वक्ता को भाषण देना चाहिए।

श्रोताओं की संख्या कम हो या अधिक, उन्हें पास–पास ही बैठाना ठीक होगा। श्रोताओं के अलग–अलग बैठने पर उनकी ग्रहण–शक्ति क्षीण पड़ जाने के फलस्वरूप, उनके मन पर भाषण का उपयुक्त प्रभाव नहीं पड़ता; किन्तु यदि वे एक–दूसरे से सटकर बैठें, तो समूह–मनोवृत्ति सुदृढ़ होती है और प्रत्येक की सहानुभूति निषेधात्मक वृत्ति से विरत भी रहती है।

●●●